दैनिक जागरण

जो भी काम करें, वह पूरे विश्वास और लगन के साथ करें

कांग्रेस की दिशा

कांग्रेस की मानें तो राहुल गांधी अभी भी अपने इस्तीफे पर अडिग हैं। संशय केवल इस पर ही नहीं है कि वह अध्यक्ष पद सचमुच छोड़ने जा रहे हैं या नहीं, बल्कि इस पर भी है कि कांग्रेस के विभिन्न नेताओं और खासकर पार्टी के प्रदेश अध्यक्षों की ओर से त्यागपत्र की जो पेशकश की जा रही है वह मंजूर होगी या नहीं? देखना यह भी है कि क्या इस्तीफे की पेशकश करने वाले नेताओं में वे भी हैं जिन पर राहुल गांधी ने यह आक्षेप किया कि उन्होंने अपने बेटों को चुनाव जिताने पर ज्यादा ध्यान दिया? राहुल गांधी को यह पहले से पता होना चाहिए था कि कोई भी नेता हो वह अपने बेटे के चुनाव जीतने की ज्यादा चिंता करेगा ही और इस कोशिश में अन्य प्रत्याशियों की अनदेखी हो सकती है। क्या ऐसा कुछ है कि राहुल गांधी की अनिच्छा के बाद भी कमलनाथ और अशोक गहलोत जैसे नेता अपने बेटों को प्रत्याशी बनाने में समर्थ हो गए? निःसंदेह राजनीतिक दलों में आंतरिक लोकतंत्र के लिए स्थान होना ही चाहिए, लेकिन इतना भी नहीं कि बड़े नेता या क्षत्रप अपनी मनमानी करने में समर्थ रहें। अगर राहुल गांधी इस मनमानी को रोक नहीं सके तो इसका मतलब है कि वह पार्टी को सही तरह से संचालित नहीं कर पा रहे हैं या फिर उनकी सुनी नहीं जा रही है।

राहुल गांधी ने जब कांग्रेस अध्यक्ष पद संभाला था तो ऐसे संकेत दिए थे कि वह नई पीढ़ी के नेताओं को आगे बढ़ने का अवसर देंगे, लेकिन बाद में वह नई और पुरानी पीढ़ी के बीच संतुलन बनाने की कोशिश में लग गए। वह इसमें नाकाम रहे और इसकी एक वजह नई पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी के बीच की खींचतान भी दिखती है। इस खींचतान के साथ ही उन फैसलों की भी अनदेखी नहीं की जा सकती जो कांग्रेस के लिए संकट का कारण बने अथवा जिनके चलते जनता में भ्रम फैला। आखिर महागठबंधन बनाने के दावे किए जाने के बाद भी उसे आकार क्यों नहीं दिया जा सका? यह समझना भी कठिन है कि चुनाव के ठीक पहले प्रियंका गांधी को महासचिव बनाकर राजनीति में सक्रिय करने की क्या जरूरत थी? निःसंदेह अमेठी के साथ वायनाड से भी चुनाव लड़ने के फैसले को भी बहुत सुविचारित नहीं कहा जा सकता, क्योंकि इससे उत्तर भारत की जनता को सही संदेश नहीं गया। यह मानने के भी अच्छे-भले कारण हैं कि घोषणा पत्र के कुछ मुद्दे भी कांग्रेस के लिए मुसीबत का कारण बने। सवाल यह है कि इन सब फैसलों के लिए कौन जिम्मेदार है? इस सवाल का जवाब मिलने के साथ ही यह संदेह भी दूर होना चाहिए कि कहीं कांग्रेसी नेताओं का कोई ऐसा गुट तो नहीं जो राहुल को असफल होते हुए देखना चाहता हो? राहुल के इस्तीफे की पेशकश जो भी रंग लाए, यह जरूरी है कि कांग्रेस संगठित नजर आए और संगठन में ऐसे नेताओं को महत्व मिले जो जनाधार वाले हैं। पार्टी को ऐसे नेताओं से भी बचना होगा जो वामपंथी विचारों से कुछ ज्यादा ही प्रभावित हैं। यह ठीक नहीं कि कांग्रेस वैचारिक रूप से वामपंथी दलों सरीखी नजर आए।

जल संकट

झारखंड की राजधानी रांची समेत राज्य के कई शहरी इलाकों में गंभीर जल संकट की स्थिति उत्पन्न हो गई है। वहां रहने वाले लोगों का अधिकांश समय पानी की व्यवस्था में खर्च हो जा रहा है। आलम यह है कि कई शहरों में 300 से 400 फीट तक गहराई वाली बोरिंग भी बहुत मशक्कत से 10-20 लीटर पानी उगल रही है। कुछ इलाके ऐसे हैं जहां हजार फीट पर भी पानी मयस्सर नहीं है। विभिन्न शहरों के कई हिस्से ड्राई जोन घोषित हो चुके हैं। शहरों की औसतन 45 फीसद आबादी, जहां आज भी पाइपलाइन के सहारे जलापूर्ति नहीं हो पा रही है, वहां की स्थिति और भी भयावह है। टैंकरों से की जा रही जलापूर्ति के लिए अहले सुबह से ही लोगों की लंबी कतारें लग रही हैं। पानी के लिए मारपीट सामान्य घटना क्रम में शामिल हो रही है। सालाना 2.4 फीसद की रफ्तार से बढ़ रही शहरी आबादी के लिए यह गंभीर खतरे का संकेत है। समय रहते अगर इसके वैकल्पिक उपाय नहीं किए गए तो जल संकट की यह स्थिति और भी गहराती चली जाएगी। सवाल यह कि जहां 1100 से लेकर 1400 मिली वर्षा होती हो, वहां का भू-गर्भ जल स्तर पाताल क्यों छू रहा? दो-ढाई दशक पूर्व जहां महज 40-50 फीट की गहराई पर पानी की उपलब्धता थी, आज ये हालात क्यों हुए? गिरते जल संकट पर शोध कर रहे वैज्ञानिकों की मानें तो पानी के उपयोग की स्पष्ट नीति न होना, विकास के नाम पर कंक्रीट का बढ़ता संजाल, नष्ट होते प्राकृतिक जल स्रोत, कटते जंगल, वर्षा जल को रोकने का उपाय नहीं होना गहराते जल संकट के मूल कारण है। समेकित प्रयास से ही इस स्थिति से निपटा जा सकता है। इसके लिए जरूरी है कि सरकार जल संरक्षण के प्राकृतिक तथा वैज्ञानिक तरीकों पर फोकस करे। अंधाधुंध बोरिंग पर अविलंब रोक लगे, वाटर हार्वेस्टिंग अनिवार्य कर दिए जाए, वर्षा जल को रोकने के लिए प्रभावी चेक डैम, गार्डवाल का निर्माण हो, ताल-तलैयों का जीर्णोद्धार, उसके कैचमेंट एरिया को अतिक्रमणमुक्त कर आदि उपायों से इस संकट से उबरा जा सकता है। पानी की रिसाइक्लिंग, खदानों में उपलब्ध पानी का उपयोग, ड्रिप इरिगेशन आदि जल संरक्षण के विविध उपायों में से एक हो सकते हैं। आवश्यकता है इन उपायों पर ईमानदारी से पहल करने की अन्यथा भावी पीढ़ी को बूंद-बूंद के लिए तरसना होगा।

अहंकारी विशिष्ट बौद्धिक वर्ग की पराजय

शंकर शरण

आम चुनाव के नतीजों के साथ ही विशेषाधिकारी अंग्रेजीभाषी, अहंकारी बौद्धिक-राजनीतिक वर्ग की खानदानी सत्ता सदा के लिए चली गई

स्वतंत्र भारत में पीढ़ियों से एक विशेषाधिकारी वर्ग केंद्रीय सत्ता का दरबारी, सहयोगी और चहेता रहा है। उसी को कभी लुटियन तो कभी खान-मार्केट 'गिरोह' कहा जता है। इसी वर्ग की प्रतिनिधि शोभा डे और तवलीन सिंह ने चुनाव नतीजों के बाद कई महत्वपूर्ण बातें स्वीकार की हैं। उन्होंने माना कि अब 'इंडिया' वाला राज्यतंत्र अंतिम रूप से 'हिंदुस्तान' के हाथों जा चुका है। इसका आरंभ मई 2014 में हुआ और मई 2019 में मुकम्मल हो गया। विशेषाधिकारी अंग्रेजीभाषी, अहंकारी बौद्धिक-राजनीतिक वर्ग की खानदानी सत्ता सदा के लिए चली गई। उसका स्थान साधारण पृष्ठभूमि वाले, भारतीय भाषा-भाषी और आम जन-गण से जुड़े लोगों ने ले लिया है। इस विस्थापन में नेता, बुद्धिजीवी और पत्रकार सभी शामिल हैं।

तवलीन सिंह जोर देकर कहती हैं कि यह उनका प्रत्यक्ष आजीवन अनुभव है कि इस सुविधाभोगी विशेषाधिकारी वर्ग का हर चीज पर संपूर्ण नियंत्रण था, 'हम राजनीति, सरकार, व्यापार, विदेश नीति, पुलिस, सेना और मीडिया सब कुछ पर नियंत्रण करते थे। यह इसलिए संभव हुआ कि जबसे अंग्रेज गए तभी से कमोबेश हम सब नेहरू-गांधी परिवार के दरबारी थे। हम जानते थे कि उन का सोशलिज्म और सेक्युलरिज्म उतना ही झूठा था जितना उनका आइडिया ऑफ इंडिया।' तमाम बड़े पदों और मीडिया में केवल अंग्रेजी-प्रवीण लोग आगे बढ़ाए जाते थे। अंग्रेजी कोई भाषा नहीं, बल्कि एक विशेषाधिकारी वर्ग की परिभाषा थी। संसद में भी भारतीय-भाषी किसी तरह बर्दाश्त किए जाते थे और वह भी नाक-भौं सिकोड़ते हुए, मानो वे किसी प्राइवेट क्लब में अनुचित घुस गए हों। इसी वर्ग ने कांग्रेस नेतृत्व को भी खानदानी बनाने का विचार दिया। यह स्वीकारोक्ति स्वतंत्र भारत की बौद्धिकता का सबसे केंद्रीय सत्य है।

दशकों से हमारे बड़े-बड़े बौद्धिक सुख-सुविधा एवं विशेषाधिकारों के लोभ में जानबूझ कर झूठी बातें और नारे फैलाते रहे। इसे पहले भी राज थापर, अरुण शौरी, सीताराम गोयल जैसे सत्यनिष्ठ लेखकों ने रेखांकित किया, मगर उनकी बातें दबाई जाती रहीं, पर अब हिंदुस्तान से अंग्रेजी-भाषी, विशेषाधिकारी, मतवादी बौद्धिकता का प्रभाव लुप्त हो रहा है। वर्तमान जनादेश इसका भी संकेत है। वस्तुतः यह एक लंबी प्रक्रिया की परिणति है जिसमें हमारे प्रभावी बुद्धिजीवियों की विश्वसनीयता गिरती चली गई। अयोध्या आंदोलन के बाद से ही बार-बार दिखने लगा कि कई बड़ी राष्ट्रीय समस्याओं, घटनाओं पर नामी संपादकों, लेखकों, प्रोफेसरों, स्टार एंकरों द्वारा भर्त्सना या अनुशंसा के बावजूद जन-साधारण पर उसका प्रभाव नहीं पड़ रहा था। इस चुनाव ने यह अंतिम रूप से तब स्थापित कर दिया जब तमाम नामी लोगों की आशाएं धूल-धूसरित हो गईं। उन्होंने मई 2014 को दुर्घटना भर समझा था, और तबसे अपना रुतबा घटने को अपवाद व्यवधान मानकर इंतजार कर रहे थे। दशकों से सत्ताधारियों तक उन की सीधी पहुंच रहती थी। वस्तुतः 2014 के बाद सबसे बड़ा नुकसान लिबरल बौद्धिकों का ही हुआ। इसीलिए वे लगातार मोदी सरकार पर संकीर्ण टिप्पणियां करते रहे। उनकी बातें उन अखबारों और टीवी चैनलों पर ही आती थीं जिनसे आम लोग अधिकाधिक दूर होते गए हैं। आम चुनाव में उन्होंने अनाधिकारी भाजपा को हटाकर पारंपरिक, खानदानी, नामदारों के फिर काबिज होने की कल्पना कर रखी थी। मोदी को हिंदुत्व के भोंड़े नेता, सर्वसत्तावादी, संस्थाओं को खत्म करने वाला आदि चित्रित करके वे आश्वस्त थे कि उन्हें हरा दिया जाएगा। मोदी की तुलना में राहुल गांधी को भला और उपयुक्त दावेदार दिखाने का प्रयास हुआ।

अवधेश राजपूत

अंग्रेजी मीडिया में भले ही राहुल और प्रियंका को विशेष प्रचार मिला हो, पर समाज में एक गंभीर परिवर्तन चल रहा था। अंग्रेजी-भाषी नामी बौद्धिकों, पत्रकारों को पीछे छोड़ते हुए देसी भाषा-भाषी लोगों का प्रभाव बढ़ रहा था। शोभा डे लिखती हैं, 'गत पांच साल हम वास्तविकता झुठलाते रहे। अपने अहंकार में सोचते रहे कि यह बीत जाएगा, मगर यह क्या चीज है जिसके बीत जाने की हमने आशा की थी? इसका कोई उत्तर नहीं मिलता।' विशिष्ट बौद्धिक वर्ग से परे एक भरा-पूरा विशाल हिंदुस्तान है जो अपने अनुभव से कुछ और सबक निकाल रहा है। उसे मोदी की बातें, उनके काम गलत नहीं लगे। इसलिए उसने अपना मत देकर उस जगह को भर दिया, जिसे विशिष्ट वर्ग अपनी बपौती समझता रहा था। एक असाधारण परिवर्तन हुआ है। वंशवादी सत्ताधारियों समेत पारंपरिक सुविधाभोगी, विशेषाधिकारी बौद्धिक वर्ग इतिहास की चीज बन रहे हैं। ये बौद्धिक वही लोग थे जिन्होंने इंदिरा द्वारा तमाम संवैधानिक संस्थाओं को चौपट करते जाने की कभी आलोचना नहीं की। सुप्रीम कोर्ट जजों को भी सत्ताधारी नेता के प्रति जबावदेह बनाने की कोशिश का उन्होंने विरोध नहीं किया। दरअसल उनके 'आइडिया ऑफ इंडिया' में मुख्यतः अपने विशेषाधिकारों की ही चिंता थी। किसी योग्यता, न्याय और जनगण के अधिकारों का उसमें कोई विशेष ध्यान नहीं था। अब उन्हें लग रहा है कि वे पूरी तरह अप्रासंगिक हो चुके हैं। चुनाव परिणामों से उन्हें किसी प्रियजन की मृत्यु सा शोक हो रहा है। अभी भी उन घिसे-पिटे सेक्युलर, वामपंथी मुहावरों में लकीर पीट रहे हैं, जो सच ढकने और झूठ सजाने के काम आते थे। उदाहरण के लिए प्रतापभानु मेहता आज देश को 'घोर संकट-ग्रस्त' मान रहे हैं, जहां अल्पसंख्यकों को अपदस्थ करके स्थायी रूप से 'मेजोरिटेरियन' राज्य बनाया जा रहा है। यह चुनाव 'भय और घृणा की राजनीति' की जीत है। धार्मिक समेत देश की सारी संस्थाएं एक ही व्यक्ति के गिर्द संकेंद्रित हो गई हैं। यद्यपि उन्होंने यह भी माना कि समाज में चुपचाप कोई गहरी उथल-पुथल हो रही है, जो चुनावी राजनीति से परे है। देश में प्रचलित राजनीतिक मुहावरे बदल रहे हैं। विचार-विमर्श में 'लिबरल', 'सेक्युलर' आदि बुरे शब्दों में बदल गए हैं, जिनका प्रयोग अब नहीं हो रहा। विरोधी दल भी अपने को लिबरल, सेक्युलर कहलाना नहीं चाहते। इन शब्दों का प्रयोग छोड़ देना मेहता और उनके जैसे अन्य लोगों के लिए मानो बेईमानी है, 'जिन्हें फिर से प्रचलित कराने में लंबी बौद्धिक मेहनत करनी पड़ेगी।' मेहता सरीखे लोग भूलते हैं कि उन विदेशी मुहावरों का देश की जमीनी सच्चाइयों से कभी संबंध नहीं रहा। मुख्यतः अंग्रेजी भाषा के अबूझ टोने-टोटके और सत्ता बल से उन्हें जैसे-तैसे विश्वसनीय बनाए रखा गया था। अब जब इंडिया के बदले हिंदुस्तान अपनी जगह ले रहा है वे मुहावरे और बेकार हो चुके हैं।

अच्छी बात यह है कि जाने-माने बड़े बौद्धिकों में से कुछ अपने पुराने, बने-बनाए विश्वासों, नारों पर पुनर्विचार कर रहे हैं। क्या वे अपने ही नारों से भ्रमित हो गए थे या सत्ता-सुविधा की आदत ने उन्हें मानसिक रूप से बेईमान बना दिया था? इसका उत्तर जो भी मिले, इससे जुड़े सभी प्रश्नों का खुलकर सामना करना आज की जरूरत है। तभी न केवल हमारी राजनीति, बल्कि शिक्षा को भी मतवादी कैद से मुक्त कर भारतीय बौद्धिकता को स्वतंत्र और मौलिक बनाने की दिशा में बढ़ा जा सकता है।

(लेखक राजनीतिशास्त्र के प्रोफेसर एवं वरिष्ठ स्तंभकार हैं)

response@jagran.com

देश की भावी राजनीति का खाका

प्रकाश जावड़ेकर

चुनाव नतीजों के बाद प्रधानमंत्री की ओर से दिए गए भाषण भविष्य की राजनीति की झलक पेश कर रहे हैं

2019 के ऐतिहासिक चुनाव नतीजों के बाद प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने अपनी दूरदृष्टिता का परिचय देने वाले तीन भाषण दिए हैं। उन्होंने अपना पहला उद्बोधन मंत्रिमंडल बैठक में किया। वहां उन्होंने कहा कि यह एक ऐतिहासिक जीत है। यह जनता द्वारा लड़ा हुआ चुनाव है। यह सकारात्मक मतदान है। मतदाताओं ने परफॉर्मेंस को वोट दिया है। अर्थात यह सरकार जाति पर नहीं, काम के आधार पर दोबारा चुनकर आई है। इसके पहले जिस दिन चुनाव के नतीजे घोषित हुए उसी दिन शाम को भी पार्टी दफ्तर में प्रधानमंत्री ने एक भाषण दिया। इसमें उन्होंने कहा कि भाजपा ने दशकों बाद 'दो' से 'दोबारा' पूर्ण बहुमत की सरकार बनाई है। यह भारतीय जनता पार्टी की बढ़ती हुई लोकप्रियता की परिचायक है। 1984 में लोकसभा में केवल दो सदस्य चुनकर आए थे। अब 2014 और 2019 में केंद्र में दो बार लगातार पूर्ण बहुमत की भाजपा की सरकार बनी है। 2014 में उन्होंने कहा था कि यह गरीबों को समर्पित सरकार है और आज उसी गरीब समुदाय ने इस बार भाजपा को इतना भारी ऐतिहासिक बहुमत दिया है। चुनाव में पार्टी को समाज के सभी वर्गों का साथ मिला है।

प्रधानमंत्री ने नेता चुने जाने के बाद संसद के सेंट्रल हॉल में राजग के सांसदों के सामने जो भाषण दिया वह उनकी दूरदर्शिता, देश के लिए उनके विजन, लोगों पर उनके विश्वास और लोकतंत्र के प्रति उनकी प्रतिबद्धता को दर्शाता है। मोदी जी ने इसमें चार प्रमुख नए विचार दिए। पहला विचार यह कि हमें 'सबका साथ, सबका विकास' करने के साथ सबका विश्वास हासिल करना है। जिन्होंने वोट दिया वे भी हमारे हैं, जिन्होंने वोट नहीं दिया वे भी हमारे हैं और इस प्रकार सबको साथ लेकर चलना ही हमारा इरादा है। उन्होंने कहा, 'सबका साथ, सबका विकास और सबका विश्वास।' इसे स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा कि अनेक दशकों तक अल्पसंख्यक समुदाय के मन में भाजपा के प्रति एक डर का माहौल पैदा करके विरोधी पार्टियों ने उनका वोट बैंक की तरह उपयोग किया है। अब इन पांच वर्षों में हमारा लक्ष्य रहेगा काम के आधार पर, संपर्क के आधार पर हर एक का विश्वास अर्जित करना, उनका दिल जीतना। मोदी जी ने यह भी कहा कि अल्पसंख्यक समुदाय के साथ छलावा हुआ है। कांग्रेस और अन्य दलों ने उनकी शिक्षा या बुनियादी सवालों पर कभी काम नहीं किया। सिर्फ डर का माहौल पैदा करके उनके वोट लेने का काम किया और इसलिए आने वाले पांच साल में हमारा प्रमुख लक्ष्य उनके विकास के साथ-साथ उनका विश्वास पाना रहेगा। फिर उन्होंने दूसरी एक कल्पना दी। उन्होंने कहा कि भारतीय जनता पार्टी को खुद का बहुमत मिला है। फिर भी हमारी सरकार राजग के

सभी साथियों को साथ लेकर बनेगी। 'प्रादेशिक अस्मिता और राष्ट्रीय महत्वकांक्षा' यह एक नया विचार उन्होंने देश के सामने रखा। अंग्रेजी में इसे 'नेशनल एंबिशन, रीजलन एस्पिरेशन' कहा जाता है। इस तरह से 'एनएआरए' नाम से एक नया नारा उन्होंने गढ़ा। यह बात उनकी संघ-राज्य पद्धति के बारे में प्रतिबद्धता को दर्शाती है। उन्होंने कहा कि सरकार बहुमत से आती है, लेकिन देश चलाने के लिए सबको साथ लेकर चलाना होता है। इसी कड़ी में उन्होंने तीसरा महत्वपूर्ण सूत्र दिया। उन्होंने कहा, अब 'सत्ताभाव नहीं सेवाभाव चाहिए' और सेवाभाव में 'वीआइपी कल्चर' को खत्म करना है। नए जनप्रतिनिधियों को उन्होंने आवश्यक मार्गदर्शन दिया। उन्होंने स्पष्ट किया कि जनप्रतिनिधि बनने के बाद भी सामान्य कार्यकर्ता रहने के दौरान उनके जीवन में जो भाव था वह नहीं बदलना चाहिए। उन्हें सभी लोगों को विश्वास में लेकर और सभी लोगों के साथ एक जैसा ही व्यवहार करना चाहिए। उनमें सत्ताभाव नहीं होना चाहिए, घमंड नहीं होना चाहिए, अहंकार की भावना भी नहीं होनी चाहिए। लाल बत्ती हमने खत्म की। इसका संदेश बहुत महत्वपूर्ण है कि हम वीआइपी कल्चर को तवज्जो नहीं देते।

प्रधानमंत्री ने 2014 के चुनाव के बाद खुद को 'प्रधान सेवक' कहा था। इसी तरह वह यही बताना चाहते थे कि सभी सांसद भी जनसेवक हैं। नए सांसदों को उन्होंने एक नया सूत्र किया कि 'सत्ताभाव नहीं सेवाभाव चाहिए' और समाज के साथ व्यवहार करते समय 'ममता और समता' चाहिए, 'ममभाव और समभाव' चाहिए। सभी जनप्रतिनिधि सबको एक नजर से देखें और सबके साथ ममत्व से सराबोर हो व्यवहार करें। मोदी जी ने चौथा विचार 'जनभागीदारी' का व्यक्त किया। 2014 से ही उनका जोर जनभागीदारी पर है। स्वच्छ भारत अभियान इसका उदाहरण है। आज स्वच्छ भारत केवल सरकारी कार्यक्रम नहीं रहा है, जन आंदोलन बन गया है। महिलाओं ने अनेक जगह शौचालय को 'इज्जत घर' नाम दिया है। सरकार के सभी कार्यक्रमों में जनभागीदारी हो और समाज भी इसके लिए जागरूक रहे, ऐसी वह कल्पना करते हैं।

दरअसल इस चुनाव में सामान्य जनता ने अपने इरादे अपनी भाषा में बखूबी रखे। जनता ईमानदारी देखती है। मुझे राजस्थान में रोज मजदूरी करने वाला एक कुली मिला। उसने कहा 'मोदी जी को वोट हम इसलिए देंगे, क्योंकि उनके पास न घर-बार है, न परिवार, 24 घंटे काम करते हैं। एक दिन की भी छुट्टी नहीं लेते। ऐसा ईमानदार प्रधानमंत्री हमें चाहिए।' एक गरीब किसान महिला ने कहा, 'वह गरीबी से आए हैं इसलिए गरीब की सोचते हैं।' एक सुदूर गांव के एक आदिवासी युवक ने कहा, 'पहले पाकिस्तानी सेना हमारा कोई जवान पकड़ती तो उसका अंग-भंग कर देती थी, लेकिन यह बहादुर प्रधानमंत्री 24 घंटे के अंदर पाकिस्तान से हमारे पायलट को जिंदा वापस लाया।' चुनाव प्रचार के दौरान मुझे मोदी सरकार द्वारा चलाई जा रही विभिन्न योजनाओं के ढेरों लाभार्थी भी मिले। उन्होंने बताया कि कैसे उनके जीवन में भारी बदलाव आए हैं। सारी योजनाओं के लाभार्थियों को मोदी जी के प्रति एक विश्वास जगा है और इसी का नतीजा है कि ऐतिहासिक मतों के साथ एक ऐतिहासिक जीत भारतीय जनता पार्टी ने हासिल की है।

मुझे लगता है कि अपने इन उद्बोधनों से जरिये उन्होंने यह स्पष्ट किया है कि वह आने वाले दिनों में देश की राजनीति को कैसे चलाना चाहते हैं? इन तीन भाषणों को सुनने के बाद सेक्युलरिज्म की बात करने वाले, खुद को लिबरल बुद्धिजीवी और तथाकथित प्रगतिशील मानने वाले समझ जाएंगे कि मोदी जी की दृष्टि उनसे कहीं अधिक सर्वसमावेशी, बहुसांस्कृतिक एवं 21वीं सदी की भावनाओं को समझने वाली है।

(लेखक पूर्व केंद्रीय मंत्री हैं)

response@jagran.com

ऊर्जा

सुख-दुख

निरपेक्ष-भाव से जीने का तरीका व्यक्ति को तमाम उलझनों, संकटों से मुक्त करता है। जीवन में झंझावात, विपरीत हालात तभी उत्पन्न होते हैं, जब किसी भी सांसारिक आकर्षण के प्रति गहरा लगाव हो जाता है और उसकी पूर्ति नहीं हो पाती है तो बेचैनी होती है जो व्यक्ति की परेशानी का कारण बनता है। कोई सुखद अवसर हाथ से निकल जाए तो अपने मन पर सर्वप्रथम नियंत्रण रखने के लिए कोई ऐसे उपाय करने चाहिए ताकि मन में उथल-पुथल न आने पाए, क्योंकि इस स्थिति में अन्य कार्यों पर इसका विपरीत प्रभाव पड़ेगा। इसी स्थिति को स्वविवेक से नियंत्रित करने के लिए प्रकृति के सानिध्य में रहना, योग-प्राणायाम, सत्संग, भजन-कीर्तन आदि करना चाहिए।

गीता में श्रीकृष्ण ने इसी निरपेक्ष भाव को स्थितिप्रज्ञ कहा और अर्जुन से कहा कि यह जीवन की सर्वश्रेष्ठ स्थिति है। इन दिनों भौतिकता की आंधी चल रही है। पद-प्रतिष्ठा, मान-सम्मान, रुपया-पैसा कुछ अधिक मिला नहीं कि व्यक्ति खुद को समाज में सर्वश्रेष्ठ बनने और कहलाने का उद्यम करने लगता है। ये सारी चीजें अहंकार को जन्म देती हैं और अहंकारी व्यक्ति समाज में अलग-थलग पड़ने लगता है। देखने में ऐसा लगता है कि वह बहुत लोकप्रिय है, लेकिन यह सब कृत्रिम ही होता है। वह गफलत में रहता है। जरा सी विपरीत स्थिति आई नहीं कि कृत्रिम लोग भाग खड़े होते हैं और फिर कल तक वाहवाही का जीवन जीने वाला तबाही की ओर जाने लगता है। क्योंकि सब कुछ पैसे या रुतबे से नहीं हासिल होता। रुपया-पैसा इतना अहम न हो जाए कि वह व्यक्ति का स्वरूप बिगाड़ दे और अपनों से दूर कर दे तथा रिश्तों में मिठास गायब कर खटास पैदा कर दे।

जिंदगी के बाजार में रूप, रुपैया, रुतबा मिले तो उससे न दोस्ती और न विरोध का भाव ही निरपेक्ष भाव है। हो सकता है कोई ऐसा वक्त आए कि इस जिंदगी के बाजार में बड़ा पद, बड़ा धन, बड़ा दबदबा हासिल हो और हो सकता है कि किसी वक्त यह सब न रह जाए तब भी मन-मस्तिष्क में संतुलन बनाए रखना चाहिए। श्रीराम राजगद्दी पाते-पाते वनवास पा गए, लेकिन अपनी मर्यादा नहीं छोड़ी। यदि निरपेक्ष भाव से जीने की आदत रहेगी तो न सुख में उछलने की और न दुख में विचलित होने की स्थिति आएगी।

सलिल पांडेय

सूरत हादसे से क्या सबक लिया हमने

अंशुमाली रस्तोगी

यही तो त्रासदी है हमारे समाज की कि यहां भयंकर हादसों पर भी गंभीरता से संज्ञान नहीं लिया जाता

अपने देश में जान कितनी सस्ती है, इसे अभी हाल में गुजरात के सूरत में एक कोचिंग सेंटर में लगी भीषण आग और तकरीबन 20 छात्र-छात्राओं की मौत से समझा जा सकता है। हद तो यह है कि बच्चों को अपनी जान बचाने के लिए घबराहट में तीसरी और चौथी मंजिल से कूदना पड़ा। अब जबकि यह भयंकर हादसा सामने आया है तो सुरक्षा के तमाम मानक गिने और गिनवाए जा रहे हैं। आग से निपटने के लिए कोचिंग सेंटर में किन चीजों की कमी रही थी या लापरवाही कहां बरती गई? यह सब देखा-समझा जा रहा है। हमेशा यही तो होता आया है, जब तक कोई बड़ा हादसा हो नहीं जाता हम नींद से जागते ही नहीं। अगर जाग भी जाएं तो इस बात की कोई निश्चित गारंटी नहीं कि वह हादसा दोबारा न हो! काहिली और कामचोरी के हम आदी हो चुके हैं। ऐसा लगता है कि हम हादसों से सबक लेना लगभग भूल चुके हैं। या कहें कि लापरवाही की ऐसी आदत पड़ चुकी है हमें कि कहीं कुछ भी घट जाए हमारी सेहत पर खास फर्क नहीं पड़ता।

आखिर ऐसा क्यों हैं? क्यों हम दिन-प्रति-दिन इतने असंवेदनशील होते जा रहे हैं? हम ऐसा क्यों नहीं मानते या सोचते कि हादसे में मारे गए बच्चे हमारे अपने थे। हम बार-बार गलतियों को दोहराते हैं। बार-बार माफी मांगते हैं। बार-बार हमारा खून भी खौलता है। बार-बार हम व्यवस्था को भी कोसते हैं। बार-बार हम फिर वहीं लौट आते हैं, जहां से चले थे। ऐसा कब तक और क्यों चलता रहेगा? क्या हम ऐसे ही संवेदनहीन बने रहेंगे?

ऐसा भी नहीं कि सूरत का हादसा कोई नया हो। इससे पहले भी कितने ही भयानक हादसे देश में घट चुके हैं। कभी भीषण आग तो कभी अस्पताल में गैस लीक की घटनाएं तक हो चुकी हैं। ऐसी-ऐसी जगहों पर कोचिंग सेंटर बना दिए गए हैं, जहां आग आदि से निपटने के साधन ही उपलब्ध नहीं हैं। भगवान भरोसे गाड़ी चल रही है। छात्रों का एडमिशन होना चाहिए बस बाकी सुरक्षा इंतजाम पर कौन गौर करता है।

यह सरासर गलत है। आपको बच्चों या लोगों की जिंदगी से खेलने का हक किसने दे दिया? पैसा कमाने के चक्कर में इतने अंधे भी न हो जाएं कि संवेदनशीलता को ही ताक पर रख दें। यह उचित नहीं। यह मनुष्यता के खिलाफ है। कई साल पहले दिल्ली के उपहार सिनेमा में हुए भीषण अग्निकांड को कौन भूल सकता है। आज भी लोग उस हादसे को याद कर सिहर जाते हैं, लेकिन सबसे बड़ा सवाल तो यही है कि हमने इस हादसों से सबक क्या लिया? थोड़े दिन तक तो सरकार, शासन-प्रशासन इस पर गंभीर रहते हैं। कुछ जगहों पर सख्ती भी होती है, लेकिन धीरे-धीरे सब भुला देते हैं। यही तो त्रासदी है हमारे समाज की कि यहां भयंकर हादसों पर भी गंभीरता से संज्ञान नहीं लिया जाता।

देखना तो अब यह है कि सूरत अग्निकांड से ठोस क्या निकल कर आता है? कोचिंग संस्थानों पर न केवल सूरत, बल्कि पूरे देश में नकेल कसी जाती है कि नहीं? कितनों पर सख्त कार्रवाई होती है, कौन नियमों का पालन करता है? या फिर अगले किसी बड़े हादसे के होने तक हम सब मुंह पर ताला लगाए बैठे रहते हैं।

(लेखक स्वतंत्र टिप्पणीकार हैं)

मेलबाक्स

तनाव बढ़ाने वाले कदमों से बचने की दरकार

सफलता को देनी होगी निरंतरता शीर्षक से लिखे अपने लेख में विवेक काटजू ने विगत पांच वर्षों की भारतीय विदेश नीति पर प्रकाश डालते हुए यह आशा जताई है कि आने वाले समय में अंतरराष्ट्रीय राजनीति में हम और भी बेहतर स्थिति में होंगे। वास्तव में अंतरराष्ट्रीय संबंधों में कोई भी देश किसी भी देश का न तो स्थायी मित्र होता है और न ही स्थायी शत्रु होता है। संबंधों में केवल एक चीज स्थायी होती है वह है राष्ट्रीय हित, जिसे साधने के लिए शत्रु एवं मित्र बदलते रहते हैं। अपने हितों की रक्षा के लिए ही चीन को डोकलाम में भारतीय कूटनीति के समक्ष झुकना पड़ा और पाकिस्तान को समर्थन देने के पीछे भी उसके राष्ट्रीय हित ही हैं। इसलिए हमें भी अपने हितों की रक्षा के लिए कूटनीतिक स्तर पर अंतरराष्ट्रीय तनावों को बढ़ावा देने वाले कदम से बच कर रहना पड़ेगा। हालांकि देश के समझ अंतरराष्ट्रीय चुनौतियों के साथ-साथ राष्ट्रीय स्तर पर भी कुछ चुनौतियां खड़ी हैं। जैसे कि नागरिकों की सुरक्षा और उनकी शिक्षा। मोदी सरकार को अब अपने दूसरे कार्यकाल में इन समस्याओं से भी निपटना चाहिए।

डॉ. हरिप्रसाद राय, आजमगढ़

सुदेवी की पीड़ा

जर्मन महिला फ्रेडरिक इरिना ब्रुनिंग उर्फ सुदेवी विगत अनेक सालों से मथुरा में गोसेवा में लगी हैं, लेकिन अब वीजा की अवधि ना बढ़ने के कारण उनको देश छोड़ कर वापस लौटना होगा। सुदेवी गोवंश की सेवा के लिए पद्मश्री से सम्मानित हैं। वह बीमार गायों को छोड़कर जाना नहीं चाहतीं, लेकिन मजबूर हैं। व्यथित सुदेवी का कहना है कि अगर मुझे अनाथ गोवंश से बिछड़ना पड़ा तो मैं अपना पद्मश्री सम्मान भारत सरकार को लौटा दूंगी। यह अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है कि गायों की सेवा में अपना जीवन अर्पित कर चुकी विदेशी महिला को कानूनी अड़चनों के कारण वापस जाना पड़ रहा है। केंद्र सरकार को इस मामले का संज्ञान लेकर उनकी मदद करनी चाहिए।

बृजेश श्रीवास्तव, गाजियाबाद

जनता को बड़ी आशाएं

वर्ष 2019 का लोकसभा चुनाव एक तरह से मोदी पर जनमत संग्रह था। जनता ने जाति- धर्म से ऊपर उठकर उन्हें खुलकर वोट दिया। ढेर सारी समस्याओं से घिरी जनता को अब उनसे और बड़ी आशाएं हैं। यह सही है कि यथा राजा तथा प्रजा। राजा और प्रजा का संबंध तो सदा पिता-पुत्र जैसा ही होता है। इस बात को विशेषकर ध्यान में रखकर ही उन्हें अब आगे बढ़ना होगा। इस चुनाव के बाद उन पर अब एक और बड़ी जिम्मेदारी आ गई है जिसे उन्होंने खुद स्वीकार भी किया है। कई बड़े कार्यों के साथ निश्चित ही राष्ट्र सुरक्षा और आतंकवाद पर तो उल्लेखनीय कार्य हुआ है। अब उन्हें विदेशी घुसपैठ, जनसंख्या नियंत्रण, रोजगार और सुनियोजित विकास पर विशेष कार्य करना होगा जिसके बिना आगे नहीं बढ़ा जा सकता। उम्मीद है कि वह देश को और नई दिशा देंगे।

वेद मामूरपुर, नरेला

नतीजे सबके लिए सबक

भारत की राजनीति हर 20-25 साल में बदलती